Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
Available online at : www.gisrrj.com
OPEN ACCESS
© 2025 GISRRJ | Volume 8 | Issue 4 | ISSN : 2582-0095
doi :https://doi.org/10.32628/GISRRJ

याज्ञवल्क्यस्मृति का नवीन भारतीय न्याय संहिता पर प्रभाव

सुकृति दीक्षित

शोधच्छात्रा,संस्कृत विभाग, डी0जी0पी0जी0कॉलेज, सिविल लाइन्स कानपुर, उत्तर प्रदेश

Article Info
Volume 8, Issue 4
Page Number : 19-24

Publication Issue :
July-August-2025

Article History
Accepted : 25 June 2025
Published : 10 July 2025

शोध सारांश - वर्तमान में प्रचलित न्याय संहिता पर याज्ञवल्क्यस्मृति का अप्रतिम प्रभाव है। सम्पूर्ण न्याय संहिता स्मृतियों से ही प्रभावित है चाहे वह अपराध हो अथवा दण्ड स्मृतियों से कुछ भी अछूता नहीं है। अपनी धर्म की दिव्य अवधारणा के सहारे स्मृतियों ने ऐसी सामाजिक व्यवस्था का खाका हमारे मध्य प्रस्तुत किया जो अनेक आधुनिक समाजशास्त्रियों के द्वारा भी बहुत उपयोगी माना गया है। स्मृतियों में वर्णित आचार-संहिता द्वारा निर्देशित और संचालित हमारी सामाजिक संरचना इतनी सक्षम और सुदृढ़ होती चली गयी कि बाहरी दबाव भी उसे ध्वस्त करने में असमर्थ रहे। आज हम भारतीय बड़े ही गर्व से सामाजिक -सांस्कृतिक व्यवस्था के जिस सातत्व की चर्चा करते हैं और विश्व जिसे आश्चर्य से देखता है वह सब हमारी स्मृतियों का ही फल है। जिसके कारण आज हम न्याय विधान को सुचारू रूप से चलायमान देख पा रहे हैं ।

मुख्य शब्द :- याज्ञवल्क्यस्मृति, न्याय संहिता, सामाजिक, सांस्कृतिक, धर्मशास्त्र, महाप्रलय, धर्मसूत्र।

" श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृति। " (मनुस्मृति 2.10)

जब हम किसी भी विषय वस्तु का अध्ययन करते हैं तो सर्वप्रथम उस विषय में निहित मूल तत्व को जानना आवश्यक होता है अत: यह प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है कि श्रुति / स्मृति है क्या इसकी उपयोगिता क्या है मानव अपने जीवन में क्या कर्म करे क्या न करे क्या उचित है क्या अनुचित किस कर्म का सर्वथा परित्याग करना चाहिये आदि - आदि तो हमारे मीमांसकों का कहना है कि -

"वेदप्रतिपाद्य: प्रयोजनवदर्थो धर्म :"

अर्थात् वेद विहित प्रयोजन सापेक्ष अर्थकारी कार्य धर्म है । हमारे जो वेद हैं वह समस्त ज्ञान - राशिस्वरूप निधि हैं। महाप्रलय के उपरान्त हमारे ऋषियों ने कठोर तप करके पुन: वेदों का ज्ञान प्राप्त किया तभी इन्हें मन्त्र दृष्टार: कहा जाता है न कि रचयिता वेदों का ज्ञान जन सामान्य तक कैसे पहुँचे यह एक जटिल समस्या थी तब हमारे ऋषियों ने तपोजन्य ज्ञान अनुभव किया और

Copyright © 2025 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution **4.0 International License (CC BY-NC 4.0)**

वेद के अर्थ (अभिप्राय) को सामान्य जन तक उपयोगी सिद्ध हो इसका प्रयास किया जिसके फलस्वरूप स्मृति (धर्मशास्त्र) की रचना हुई ।

धर्म व धार्मिक आचार व्यवहारों की विवेचन की दिशा में धर्मसूत्र के बाद स्मृति ग्रन्थों की रचना हुई। धर्मसूत्र में जो आचार व्यवहार संक्षिप्त रूप में था स्मृति ग्रन्थों ने उनकी विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत कर जन सामान्य तक पहुंचाने का प्रयास किया । हम यह कह सकते हैं कि श्रुति एवं स्मृति के धर्मों का अनुकरण कर मनुष्य इस लोक में यश , कीर्ति तथा तरलोक में पूर्ण सुख प्राप्त कर सकता है–

"श्रुतिस्मृत्युतदित धर्ममनुतिष्ठिन्हि मानवः।

इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ (मनुस्मृति -2/9)

याज्ञवल्क्यस्मृति को स्मृतियों में विशेष स्थान प्राप्त है। मनुस्मृति के पश्चात् यह दूसरी महत्वपूर्ण स्मृति है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने स्मृतिग्रन्थ को तीन भागों–आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित में विभाजित किया है। मनुस्मृति के जहाँ दो श्लोक पढ़ेंगे वहाँ याज्ञवल्क्य का एक श्लोक अर्थात् मनुस्मृति के दो श्लोकों के बराबर याज्ञवल्क्यस्मृति का एक श्लोक है और दोनों स्मृतियों में काफी कुछ शब्दों में समानता भी देखने को मिलती है।

यद्यपि मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति में बहुत ही समानताएँ हैं फिर भी याज्ञवल्क्य मनुस्मृति की बहुत सी बातें नहीं मानते। उदाहरणार्थ–मनु ब्राह्मण को शुद्रकन्या से विवाह करने को आदेशित करते हैं परन्तु याज्ञवल्क्य जी इससे सहमत नहीं हैं। मनु ने18 व्यवहार पदों के नाम लिए हैं किन्तु याज्ञवल्क्य जी ने ऐसा नहीं किया उन्होंने मात्र व्यवहार पद की परिभाषा की। अब मनु ने जुआ की भर्त्सना की लेकिन याज्ञवल्क्य जी ने उसे राज्य नियंत्रण में रखकर आय के एक साधन के रूप में प्रस्तुति किया।

स्मृतियों में कई प्रकार के नियम हैं। इनमें जनजीवन से सम्बन्धित सामान्य एवं विशेष नियम प्राप्त होते हैं। इनमें मानव के सर्वांगीण विकास से लेकर राजा मंत्री एवं न्याय व्यवस्था से सम्बन्धित नियम भी प्राप्त होते हैं। स्मृतियों के नियम निर्माण विधि का मुख्य आधार वैदिक वाङमय है। वैदिक वाङमय में सर्वोच्च न्याय व्यवस्थापक यह न्यायाधीश के रूप में वरुण का वर्णन हुआ है वरुण दूरदर्शी हैं वो अपने भवन में बैठकर सभी कर्मों का पर्यवेक्षण करते हैं उनके चर चारों ओर बैठते हैं वे अपने भवन से ही अखिल विश्व को देखते हैं। देवता भी उनकी व्यवस्था को स्वीकारते हैं। वे सभी रहस्यों को जान जाते हैं। वरुण सत् और असत् की परीक्षा करते हैं। वरुण की व्यवस्था को भंग करना पाप माना जाता है। उस समय जो त्रुटिवश पाप कर जाते थे वरुण उस क्षमा कर देते थे इससे यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में राजा स्वयं न्याय करता था राजा ही यह देखा करता था कि राज में कौन दंड का अधिकारी है । राजा के द्वारा नियुक्त चर राज्य की गतिविधियों की सूचना राजा को देते थे। प्रजा के लिए कुछ नियमों का प्रावधान था जिसका उल्लंघन करने पर दंड दिया जाता था ।सामान्य अपराधों में राजा क्रोध प्रकट करते व उचित दंड देते थे ।तत्कालीन समाज मेंविविध प्रकार के अपराध से लिए दंड व्यवस्था थी और आपसी विवाद की स्थिति में राजा जो कि उस समय प्रायः नयायाधीश थाना करता था ।वैदिक काल में राजा के अतिरिक्त सभा भी न्याय करती थी। गाँवों में ग्राम्यवादी न्याय करते थे। न्याय के लिये भूमि , खेल में धोखा–धड़ी, ऋण उगाहना, उत्तराधिकार, चोरी , आक्रमण और हत्या सम्बन्धी विषय आते थे। वर्तमान में न्यायाधीश द्वारा दंड का विधान किया जाता है। उस समय जो न्यायिक प्रक्रिया थी और न्यायाधीश के रूप में राजा प्रतिष्ठित और तदनुसार नियम बने थे वे ही प्रायः स्मृतियों में नियम – निर्माण विधि के आधार थे।

वैदिक काल में हत्या के अभियोगों में 10 गाय से 1000 गाय और एक बैल का दण्ड हत्यारे को देना पड़ता था जिसका नाम वैरदेय था ।मध्यमशी संभवतःवादी और प्रतिवादी के बीच मध्यस्थता करता था ।वैदिक काल में न्याय व्यवस्था बहुत ही सुचारु रुप से प्रतिपादित होती थी। स्थानीय , पारिवारिक समस्याओं से लेकर राजकीय परिधि तक कठोर दंड का विधान था।

कृशाश्व कीआंखें उनके पिता ने मात्र इसलिए फोड़ दी थीं कि वह प्रजा की भेडों कोमा डालता था ।यदि पुरोहित राजा के प्रति विद्रोह करता था तो उसे मृत्युदंड दिया जाता था ।

(वैदिक इण्डेक्स भाग - 2 पृष्ठ संख्या 84)

तैत्तिरीय संहिता में अलग–अलग अपराधों के लिए अलग–अलग दण्डों का विधान है।

छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार अग्नि परीक्षा आदि दिव्य उपायों से अपराधियों का परीक्षण होता था। इस अग्नि परीक्षा से यदि सिद्ध होता था कि अभियुक्त ने चोरी की है तो उसे मृत्युदंड दिया जाता था। वैदिक न्याय व्यवस्था के अनुसार दैवीय विधान उन परिस्थितियों में न्याय का आयोजन करता था।

वैदिक काल में न्यायालय में सत्य की अतुलित महिमा रही है ।इसका प्रभाव स्मृतियों में भी सम्यक रूप से पड़ा है ।वैदिक वाङमय के अनुसार हम यह निष्कर्ष प्राप्त करते हैं कि उस समय न्याय व्यवस्था स्वतंत्र रुप से विकसित हो चुकी थी ।इसका पूर्ण प्रभाव महाभारत में देखने को मिलता है। महाभारत काल में दंड व्यवस्था अति कठोर हो गई थी ।राजा का दंड विधान सुनियन्त्रित था। न्याय पद्धति में सभी के प्रति एक समान व्यवहार करने का नियम था। महाभारत में पितामह भीष्म में युधिष्ठिर को न्याय के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार से उपदेशित किया – "कभी घूस लेकर अनुचित न्याय न करो ,नहीं तो प्रजा तुम्हें छोड़ देगी ।राजा को सदैव दीन – दुखियों का ही पक्ष लेना चाहिए ,उनके विरोधी धनिकों का नहीं ।यदि कोई अपराधी स्वयं अपराध स्वीकार नहीं करता तो प्रत्यक्षदर्शियों साक्षियों की सहायता से न्याय करना चाहिए। अपराधी को अपराध के अनुकूल ही दंड देना चाहिए। धन धनिकों को अर्थदण्ड, निर्धन को कारागार और दुराचार करने वालों को प्रहार –दंड देना चाहिए ।मनमाने दंड को देने से इस लोक में अपयश और परलोक में नरक की प्राप्ति होती है ।अपराधी के स्थान पर किसी निरपराध को दंडित नहीं करना चाहिए ।

स्मृतियों में न्याय व्यवस्था के लिए विविध प्रकार के नियमों और कानूनों को प्रस्तुत किया है ।विविध प्रकार के नियमों निर्माण विधि का मूलआधार वैदिक वाङमय ही रहा है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि स्मृतियों में नियम निर्धारण विधि के आधार और मूल स्त्रोत वेद ही हैं ।

प्राचीन भारत में राजा का राज्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था ।प्राचीन काल में राजा को सम्राट या शासक के नाम से जाना जाता था ।उस समय राजा या शासक ही सर्वश्रेष्ठ था जो सम्पूर्ण राज्य की देवस्थान नियम कानूनों का संचालन करता था। आचार्य कौटिल्य ने राजा को संक्षेप में राज्य कहा है – **" राजा राजमिति प्रकृतिसंक्षेपः " (कौटिल्य अर्थशास्त्र -8/2** मनुस्मृति में वर्णित है कि इस संसार में राजा के न होने पर पर प्रजायें, भयभीत होकर भागने लगीं। अतः भगवान ने संपूर्ण चराचर जगत की रक्षा के लिए राजा की सृष्टि की । **(मनुस्मृति -7/3)**

राजा प्रजा को उचित न्याय दे सके एतदर्थ उस ईश्वर ने दण्ड की सृष्टि की क्योंकि दण्ड के भय से सभी लोग राज नियम का पालन करते हैं। दण्ड की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि दण्ड ही राजा है । दण्ड ही नेता है । दण्ड ही शासक है मनु कहते हैं –

" दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वादण्ड एवाभिरक्षति ।

दण्डः सुप्तेषु जगति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः " ।। (मनुस्मृति -7/18)

राजा का प्रमुख कर्तव्य उचित दण्ड द्वारा प्रजा का पालन करना है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में वर्णित है कि राजा को धर्म की रक्षा के लिए सत्यवादी , कामादिदोष से रहित ,उत्तम सहायकों के सहयोग से प्रजा की रक्षा के लिये न्यायपूर्वक दण्ड का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि यदि हम शास्त्रानुसार देखें तो राजा द्वारा

प्रदत्त दण्ड देवताओं, असुरों और मनुष्यों के साथ ही समग्र संसार को आनन्दित करता है और यदि यह नियम के विपरीत हुआ तो सम्पूर्ण जगत को कुपित करता है। **(मनुस्मृति - 2/9)**

राजा का मुख्य कर्तव्य दण्ड का सम्यक और समुचित प्रयोग है। अधर्मपूर्वक किसी को भी दण्डित करना स्वर्ग, कीर्ति और लोकों का विनाशक है और विधिपूर्वक दण्डित करना राजा को स्वर्ग कीर्ति और जय प्रदान करता है। जो राजा दण्डनीय जनों को विधिपूर्वक दण्डित करता है तथा मारने योग्य लोगों को मारता है वह राजा दक्षिणायुक्त यज्ञों का अनुष्ठान का कल प्राप्त करता है ।

(याज्ञवल्क्य स्मृति आचाराध्याय 357 से 359)

अत: राजा को चाहिये कि वह सम्यक विचार करने के बाद ही न्याय की रक्षा के सम्यक् दण्ड का प्रयोग करे।

धर्म की रक्षा के लिये स्मृतियों में न्याय एवं दंड व्यवस्था का सम्यक् निरूपण हुआ है। स्मृतियों में नयायाधीश के लक्षण, कर्तव्य, गुण, वेशभूषा आदि पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। स्मृतियों में नयायाधीश के सहयोग के लिए एक समिति का भी उल्लेख है जो न्यायाधीश को परामर्श प्रदान करती है जिसे परामर्शदात्री समिति के नाम से जाना जाता है और साथ ही स्मृतियों में न्याय व्यवस्था से संबंधित साक्षी,पत्रकार ,विवाद के कारणों के विषय में भी विस्तृत वर्णन प्राप्त है। स्मृतियों में राजा को न्याय का सर्वोच्च अधिकारी माना गया है। राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा की रक्षा ,सुख –शांति काश समुचित प्रबंध करे ।राजा के कर्तव्यों में अपराध करने वाले को दंड देना प्रमुख कर्तव्य हे।

राजा के दंड के भय के कारण ही शासन व्यवस्था समुचित ढंग से चलती है क्योंकि दंड के भय से लोग अपने–अपने कर्तव्य का निर्वहन बहुत ही निपुणता से करते हैं । राज्य में सुशासन मात्र दंड के द्वारा ही संभव है।

स्मृतियों में अपील का अधिकार एवं क्षेत्राधिकार भी प्राप्त होता है । महर्षि मनु ने व्यवहार न्याय व्यवस्था , विभिन्न प्रकार की न्याय व्यवस्था का उल्लेख किया है । किन्तु मनु ने मुख्य रूप से धर्मसभा न्यायालय की कार्य प्रणाली का विस्तृत वर्णन किया है । मनु ने जिस प्रकार धर्म सभा का वर्णन किया है ऐसा प्रतीत होता है मानो उस समय धर्म सभा ही सर्वोच्च स्थान पर थी।

वर्तमान समय में दीवानी प्रक्रिया की **धारा 96** से लेकर **100** एवं आदेश **41** तथा आदेश **43** में इसी प्रकार की व्यवस्था है ।आपराधिक मामलों में भी दंड प्रक्रिया कि **धारा -478** में अपील का प्रावधान है।

वर्तमान समय में दीवानी प्रक्रिया के वादों के लिए व्यवहार प्रक्रिया संहिता **1908**' अति प्रभावी है। संहिता के **आदेश 20 नियम 1 से 5 तक** में परीक्षण उपरांत निर्णय खुले न्यायालय में हस्ताक्षरित, दिनांकित करके उद्घोषित किए जाने का विधान है तथा **नियम 6 से 19 में** आज्ञप्ति (डिग्री)बनाए जाने का विधान है। **नियम 6 बी एवं 20 में** निर्णय की नियमानुसार प्रमाणित प्रतिलिपि मांगे जाने पर निर्गत किए जाने का प्रावधान है ।सामान्य तौर पर परीक्षण एवं पक्षों के तर्क सुनने से **15** दिन के अंदर घोषित कर देना चाहिए ।अपराधिक मामलों से दण्ड प्रक्रिया संहिता **1973 प्रचलित** है **जिसकी धारा 353 से लेकर 362 के** अन्तर्गत मामले की अन्तिम सुनवाई की समाप्ति के पश्चात खुले न्यायालय में निर्णय सुनाए जाने का प्राविधान है । इस प्रकार हम यह देखते हैं कि वर्तमान न्याय प्रक्रिया में अभियोग का अपना महत्वपूर्ण स्थान है।

वर्तमान में भारतीय **संविधा अधिनियम 1872** में जमानत एवं गारंटी संबंधित विधि का वर्णन प्राप्त होता है ।**धारा 124 लगायत 147** विस्तार के साथ किया गया है। जमानत के सम्बन्ध में बन्धक पर भी विचार करना अति आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति अपनी निजी सम्पत्ति को किसी अन्य के पास गिरवी रख देता है और उसके फलस्वरूप अमुक व्यक्ति से धन भी लेता है तथा

दोनों के मध्य यह संविदा पक्षों की शर्तों के अधीन हो जाती है कि पैसा संदाय करने अथवा दायित्व पूरा हो जाने पर बंधक संपत्ति मुक्त हो जाएगी ।इस प्रकार से वर्तमान समय का कानून संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम में वर्णन किया गया है और इस विषय में विस्तृत व्याख्या की गयी है कि बंधक कितने प्रकार का होगा था अर्थात बंधक सांकेतिक होगा अथवा संपत्ति के भोग के अधिकार से युक्त होगा ।

वर्तमान संविदा **अधिनियम 1872 की धारा 14** ने कहा गया है कि संविदा करने वाले रहती की सहमति स्वतंत्र होनी चाहिए ।**धारा 15** में बताया गया है कि ऐसे संविदा बलपूर्वक प्रभाव से न ली गई हो।

धारा 16 में उल्लिखित है कि संविदा करने वाले पर अनुचित प्रभाव न डाला गया हो।

धारा 17 ऐसे संविदा जो छल प्रपंच के द्वारा हुई है ,वह अमान्य मानी गई है तथा **धारा 18** के अनुसार ऐसी संविदा जो मिथ्या कथन पर आधारित हो ,उसे भी वैधानिक होना नहीं माना जाएगा।

इसी प्रकार अधिनियम की **धारा 24** में कहा गया है कि यदि संविदा बिना प्रतिफल के हैं एवं उसका उद्देश्य अवैध है तो संविदा शून्य प्रभावी होगी तथा यदि बिना प्रतिफल के संविदा अलिखित एवं अपंजीकृत है तो उसे लागू नहीं कराया जा सकता।

किसी को व्यापार के लिये रोकना , किसी का विवाह रोकना संविदा अधिनियम की **धारा 26,27** में शून्य प्रभावी कही गयी है। **धारा 56** के अनुसार किसी आकस्मिक घटना के हो जाने पर संविदा का पालन भी कराया जा सकता है।

अत: हम कह सकते हैं कि वर्तमान में प्रचलित न्याय संहिता पर याज्ञवल्क्यस्मृति का अप्रतिम प्रभाव है। सम्पूर्ण न्याय संहिता स्मृतियों से ही प्रभावित है चाहे वह अपराध हो अथवा दण्ड स्मृतियों से कुछ भी अछूता नहीं है। अपनी धर्म की दिव्य अवधारणा के सहारे स्मृतियों ने ऐसी सामाजिक व्यवस्था का खाका हमारे मध्य प्रस्तुत किया जो अनेक आधुनिक समाजशास्त्रियों के द्वारा भी बहुत उपयोगी माना गया है। स्मृतियों में वर्णित आचार–संहिता द्वारा निर्देशित और संचालित हमारी सामाजिक संरचना इतनी सक्षम और सुदृढ़ होती चली गयी कि बाहरी दबाव भी उसे ध्वस्त करने में असमर्थ रहे । आज हम भारतीय बड़े ही गर्व से सामाजिक – सांस्कृतिक व्यवस्था के जिस सातत्व की चर्चा करते हैं और विश्व जिसे आश्चर्य से देखता है वह सब हमारी स्मृतियों का ही फल है। जिसके कारण आज हम न्याय विधान को सुचारू रूप से चलायमान देख पा रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. आयंगर, रंगस्वामी (1941), बृहस्पति स्मृति, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा ।
2. गैरोला, वाचस्पति (2015), कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी।
3. काणे, पी0वी0 (1993), कात्यायन स्मृति, पूना।
4. वासुदेव , (1968), पराशर स्मृति, वाराणसी।
5. अयंगर, के0 वी0 रंगास्वामी (1941) बृहस्पति स्मृति, बड़ौदा।
6. मिश्र, वाचस्पति (1974), विवाद चिन्तामणि, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा।
7. ठाकुर, चण्डेश्वर (1964), विवाद रत्नाकर, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता।
8. मिश्र, वाचस्पति (1974), व्यवहार चिन्तामणि, डॉ0 लूडो रोश द्वारा सम्पादित, चौखम्बा, वाराणसी ।
9. देवभट्ट, (1918), व्यवहारकाण्ड, स्मृतिचन्द्रिका, गवर्नमेन्ट ओरियन्टल लाइब्रेरी, मैसूर।
10. चौहान, प्यारेलाल (1995), स्मृतिकालीन व्यवहार पद्धति, नाग प्रकाशन।

11. ठाकुर, लक्ष्मीदत्त (1965), प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन, हिन्दी समिति , लखनऊ।
12. दीक्षित, प्रेमकुमारी , (1971), रामायण में राज व्यवस्था।
13. दीक्षित, प्रभाकर, (1991), वाल्मीकि रामायण में राजनीति विचार ।
14. दीक्षित, वी0 आर0 आर0 (1993) दि मौर्यन पॉलिटी।
15. उपाध्याय, बलदेव (1970), संस्कृत वाङमय का वृहद इतिहास (खण्ड 10) राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली ।